ISSN: 2456–4397 RNI No.UPBIL/2016/68067 Vol-5* Issue-4* July-2020
Anthology : The Research

आधुनिक हिन्दी कविता में लोक साहित्य के विविध पक्ष

Miscellaneous Aspects of Folk Literature in Modern Hindi Poetry

Paper Submission: 01/07/2020, Date of Acceptance: 10/07/2020, Date of Publication: 12/07/2020

ऋषिपाल
सह प्राध्यापक एवं अध्यक्ष,
हिन्दी विभाग,
बाबू अनन्त राम जनता महाविद्यालय, कौल, कैथल,
हरियाणा, भारत

सारांश

लोक साहित्य किसी एक विशेष व्यक्ति द्वारा नहीं लिखा जाता। लोक साहित्य केवल मौखिक अभिव्यक्ति ही है, जिसको समस्त लोक–जन स्वयं का साहित्य ही स्वीकार करता है। लोक साहित्य में प्रत्येक लोक की एवं युगों–युगों की अभिव्यक्ति समाहित होती है। इसमें सदैव लोक मानस ही प्रतिबिम्बित होता दिखाई पड़ता है। उसके किसी भी शब्द में रचना चैतन्य दिखाई नहीं देता, उसके अन्दर एक–एक शब्द, वाणी, लय और तरीका स्वाभाविक ही लोक की देन होती है जो उसके लिए बहुत आसान एवं सरल है।

Folk literature is not written by any particular author. Folk literature is an oral expression, which all the people accept as their own. Folk literature contains the expression of cultural traditions of all ages. It always seems to reflect the public mind. In any of its words, the authorial composition is not visible. Every word, speech, rhythm and manner in it is naturally given to the people, which is colloquial and simple to comprehend.

मुख्य शब्द : लोक साहित्य, लोक संस्कृति, रीति–रिवाज।
Folk Literature, Folk Culture, Customs.

प्रस्तावना

''किसी भी देश का लोक साहित्य जहां जनता की मूर्त चेतना और उसके गतिशील उत्साह, विश्वास तथा संघर्ष का परिचायक होता है, वहां वह जनता के आत्म मुखर जीवन का प्रतीक और मनुष्य की साधारण बोलचाल की भाषा के अनगढ़पन और सजीवता की विजय यात्रा की दुंदुभि बजाता हुआ आगे बढ़ता है; इसके हर बोल में शताब्दियों की संचित अनुभव राशि एक–एक शब्द को टटोलती रहती है।''[1]

शुरू से हम सभी ने 'लोक' शब्द से जो स्वरूप प्राप्त किया है, उसी का क्रम लोक साहित्य से सम्बन्ध रखता है। साहित्य सर्जना सांस्कृतिक कारणों से ही निर्मित होती है। लोक संस्कृति एवं साहित्य एक दूसरे के पूरक हैं। स्पष्ट रूप से लोक साहित्य का प्रश्न लोक भाषा से जुड़ा मिलेगा। साहित्यिक भाषा का सम्बन्ध जब लोक भाषा से कट जाता है तब उसकी स्थिति बिना पानी वाली नदी की त्यागी हुई धार के समान हो जाती है। ''लोक साहित्य सभी देशों और प्रदेशों का अपना अद्‌भुत सौन्दर्य और माधुर्य रखता है। उसके पीछे शिष्ट साहित्य की तरह एक लम्बी परम्परा है, जो शिष्ट साहित्य से हीं अधिक बड़ी और अविच्छिन्न चली आयी है। शिष्ट साहित्य भी लोक साहित्य की ही उपज है।[2] हर पर्व, अनुष्ठान, त्यौहार, रीति–रिवाज व रूढ़ियों आदि का जन्म तथा विकास समाज में ही होता है। डॉ॰ हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में, ''भारतीय साहित्य का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भाव, लोक साहित्य पर आधारित था। कहना व्यर्थ है कि यहाँ के लोक कथानकों का अध्ययन बहुत सहज नहीं है। न जाने कितनी बार वह साहित्य ऊपर स्वर के ग्रन्थों से प्रभावित हुआ है और कितनी बार उसने उसे प्रभावित किया है।[3]

'लोक' शब्द अत्यन्त प्राचीन है। सामान्य जनता के रूप में इसका प्रयोग 'ऋग्वेद' में अनेक स्थानों पर किया गया है। 'ऋग्वेद' में 'लोक' शब्द के लिए 'जन' का भी प्रयोग उपलब्ध होता है।[4] डॉ॰ हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार ऐसा मान लिया जा सकता है कि ''जो चीजें लोक चित्र से सीधे उत्पन्न होकर सर्वसाधारण को आन्दोलित, चलित और प्रभावित करती हैं, वे ही लोक साहित्य, लोक शिल्प, लोक नाट्य और लोक कथानक आदि नामों से पुकारी जा

सकती है। लोकचित से तात्पर्य उस जनता के चित से है, जो परम्परा प्रथित और बौद्धिक विवेचन परक शास्त्रों और उन पर की गई टीका–टिप्पणियों के साहित्य से अपरिचित हाता है।[5] अतीत में ऐसा माना जाता था कि 'लोक' उस वर्ग विशेष को कहते हैं, जो पाश्चात्य संस्कार, अनपढ़, विशेष ज्ञान से रहित गंवार हो। आज समय परिवर्तित हो चुका है और अभिजात्य वर्ग में भी लोक को सहर्ष स्वीकृति मिल गई है। डॉ॰ वासुदेव शरण अग्रवाल के अनुसार 'लोक' हमारे जीवन का समुद्र है, उसमें भूत, भविष्य, वर्तमान सभी कुछ संचित रहता है।[6]

लोक साहित्य शब्द दो शब्दों से मिलकर निसृत है 'लोक' और 'साहित्य।' इसलिए हम यूं भी कह सकते हैं कि लोक साहित्य लोक संस्कृति का प्रतिरूप है। लोक में जन जो कुछ भी बोलता है, सुनता है, उसे सार्वजनिक रूप से मिलकर व्यक्त करता है। इसलिए लोक साहित्य का रचनाकार बिना नाम या पहचान के होता है। लोक साहित्य की न तो भाषा होती है, न ही रचना शैली या फिर व्याकरण के नियम नहीं होते। लोक साहित्य पढ़े–लिखे लोगों से अलग जनमानस की अभिव्यक्ति का साहित्य है। महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ने हिन्दी साहित्य के सन्दर्भ में कहा है कि ''हिन्दी लोक साहित्य से मतलब यदि हिन्दी क्षेत्र के लोक साहित्य से है तो इसमें जैसलमेर से पूर्णिमा और केदार बद्री से छत्तीसगढ़ तक का लोक साहित्य आ जायेगा। भाषाओं की दृष्टि से इसमें मैथिली, मग, भोजपुरी, अवधी, बघेली, बुन्देली, छत्तीसगढ़ी, मालवी, मारवाड़ी, ब्रज, हरियाणवी, कौरवी, पहाड़ी एवं बिहार तथा मध्यप्रदेश की जन–जातीय भाषाएँ सम्मिलित हैं।''[7] अतः हम कह सकते हैं कि लोक साहित्य में विशेष भाषा साहित्य की रचना का समावेश होता है जो उस जगह की बहुत–सी बोलियों के कारण भाषा का स्परूप धारण करती है व आम आदमी की संवेदनाओं, विचारों, संस्कारों, भावों, सांस्कृतिक स्थितियों को व्यक्त करती है।

प्रत्येक भाषा में कहीं–न–कहीं मुहावरों का प्रयोग अनेकों बार होता दिखाई देता है। बहुत कम शब्दों में ज्यादा अर्थों को व्यक्त करने वाले रूपों को हम मुहावरे कहते हैं। ''मुहावरा वास्तव में लक्षण या व्यंजन द्वारा सिद्ध वह वाक्यांश है, जो किसी एक ही बोली अथवा लिखी जाने वाली भाषा में प्रचलित हो और जिनका अर्थ प्रत्यक्ष अर्थ से विलक्षण हो।''[8] स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता में अनेक कवियों द्वारा अपनी कविताओं के माध्यम से मुहावरों का प्रयोग हुआ है। भारतीय लोक जीवन में 'कुत्ते की दुम' से मतलब बदतमीज, बेशर्म या धूर्त मनुष्य से है, जो कभी भी अपने व्यक्तित्व में सुधार नहीं ला सकता। कवि लिखते हैं कि – इसका मतलब यह नही जनाब, कि मैं किसी कुत्ते की दुम हूँ, जहां हूँ, अपनी ही राहों का राही हूँ।[9]

कवि मुनि रूपचन्द्र ने भी अपनी कविताओं में मुहावरों का प्रयोग सुन्दर ढंग से किया है। 'छाती पर सांप लोटना' मुहावरे का अर्थ है ईर्ष्या होना, द्वेष होना। अपनी कविता में वे लिखते हैं कि – **वह हंसता है, सांप लोटने लग जाता है हमारे मन पर, वह रोता है, फूलों की मुस्कान उतर आती है हमारे चमन पर।**[10] भारतीय लोक जीवन में जिस थाली में खाना उसी में छेद करना धोखा देना होता है। डॉ॰ सारस्वत मोहन 'मनीषी' भी अपनी कविता में धोखे बाज आदमी के बारे में इसी मुहावरे का प्रयोग करते हुए लिखते हैं कि – नयी नयी नित मिल रही, खेद बहुत ही खेद, जिस थाली में खा रहे, करें उसी में छेद।[11]

भारतीय समाज में लोकोक्तियों का प्रयोग भी बहुधा होता है। लोकोक्ति का अर्थ है – लोक की उक्ति या कथन। जब कोई कथन अनुभव की कसौटी पर खरा उतरता है तब उसको लोकोक्ति कहते हैं ''अतः जीवन के विस्तृत प्रांगण में भिन्न–भिन्न अनुभव सर्वसाधारण जन के मानव को प्रभावित करके उसकी अभिव्यक्ति से सम्बन्धित अंग को उत्कर्ष प्रदान करते हैं। ये ही अनुभव लोकोक्तियाँ या कहावतें कहलाती हैं।''[12] भारतीय लोक मानस में ऐसी मान्यता है कि आकाश गंगा को श्रद्धा धेनु की पूंछ पकड़ कर पार करते हैं। इसके सन्दर्भ में डॉ॰ कुमार विमल लिखते हैं – कहां गण्डक? कहां गंगा? कहां है फल्गु – वैतरणी? अरे यह है एक वैतरणी, जिसे अज्ञान कहते हैं, पकड़ कर पूंछ श्रद्धा धेनु की कुछ पार जाते हैं।[13] भारतीय जन समाज में 'कोल्हू के बैल' लोकोक्ति का उल्लेख अनेकों बार होता दिखाई देता है। डॉ॰ सारस्वत मोहन 'मनीषी' 'मनीषी सतसई' में लिखते हैं कि – दूरी उपजे द्वैत से, सुन कोल्हू के बैल। बिन पाये अद्वैतता, कटे न मन का मैल।[14]

'लोकगीत' भी स्वातन्त्र्योत्तर कविता में यत्र–तत्र दिखाई पड़ते हैं। 'लोकगीत' मौखिक होते हैं। इनका कोई विशेष रूप से रचनाकार नहीं होता है। इसलिए इनमें बदलाव भी होता रहता है। लोकगीतों में समाज के सामूहिक सामाजिक मूल्यों को व्यक्त करने की शक्ति होती है, क्योंकि इन लोकगीतों का रचनाकार जनसमूह होता है। किसी विशेष गीत को एक आदमी से शुरू किया जाता है। उससे आगे उस गीत की कड़ी में असंख्य लोग जुड़ते चले जाते हैं। इस प्रकार समाज में लोकगीत रचे जाते हैं। डॉ॰ सत्येन्द्र के शब्दों में ''लोक गीत मानवीय कृतित्व की वह सामान्य धरोहर है जो विश्व मानव की भूमि पर प्राप्त हुई है।''[15] ''लोक–गीत' को मानव हृदय की प्राकृत भावनाओं की तन्मयता की तीव्रतम अवस्था की गति है जो स्वर और ताल को प्रधानता न देकर लय या धुन–प्रधान होते हैं।[16] लोकगीतों में लय, संगीत तथा सभ्य समाज के मनों को कंपाने की शक्ति मिलती है, जिसमें पहली पंक्ति टेक के लिए होती है जो प्रत्येक कड़ी में दोहराई जाती है। अंचल जी के लोकगीत लोकधुन पर आधारित हैं। उनका एक उदाहरण देखिए – आना आना जरूर पंथी सांवरिया। बौरी अंबबा की डार पंथी सांवरिया। फूले धने कचनार बेद रही छालिया। सीरी सटी बयार, कुसुम रंग–रैना–रंगी। गोरी–गोरी गंध कनेरों बीच जगी। गदरी कलगियों पार पुकार कोचलिया। आना आना जरूर पंथी सांवरिया।[17]

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी काव्य में ऋतुओं के आधार पर भी अनेक लोकगीत मिलते हैं। अज्ञेय द्वारा वर्षा ऋतु काल का गीत उनकी कविता में देखिए – बादल बरसै मूसलाधार। चरवाहा आमों के नीचे खड़ा किसी को रहा पुकार। गैया चरती हैं उस पार। दूर छबीले चिह्न मात्र हैं। जमना लहरें तल बन्धन, बादल बरसै मूसलाधार।।[18] अनेकों बार लोक गीतों में विरहणी की पीड़ा भी उजागर

होती प्रतीत होती है। एक विरहणी अपने प्रिय की प्रतिक्षा करते हुए गाती है – पिया न आये, आमों में /आ गया टिकोरा री। बंसवारी में मैना बोली / पीपल पर कोयलिया, आंगन की चन्दन गछिया पर / बोला कागा छालिया। दूर किसी झुरमुट में बोला / वन मा मोरारी। सांझ सकारे चम्पा फूलै / अधरतिया में बेला, दिन दोपहरी उह उहके / दुपहरिया अलबेला छिन–छिन पिय राता पर धनिका / मुखड़ा गोरा री।[19]

'मानवेन्द्र' में लोक–गीत का सुंदर उदाहरण मिलता है – दुलहन तेरी प्यारी भाषा। तेरा मधुर रूप न्यारा है। तेरा नृत्य बहुत प्यारा है। तन से सुन्दर मन से कोमल। जल्दी घूंघट हटा जरा सा। रंगणि! तेरे गुण न्यारे हैं। अब तक ऐसी बहू न आई। मूग्धे! तू कितना मधु लागे, गति मति! तेरी न्यारी भाषा, दुलहन तेरी प्यारी भाषा।[20]

रासलीला भी लोकनाट्य का एक अंग है। यह गांवों के लोगों तथा आम जनता के मनोरंजन का साधन है। डॉ॰ नगेन्द्र ने कहा है कि ''लोक नाट्य सामूहिक आवश्यकताओं और प्रेरणाओं के कारण निर्मित होने से लोक–कथानकों, लोक–विश्वासों और लोक तत्त्वों को समेटे चलता है और जीवन का प्रतिनिधित्व करता है।''[21] लोक–नाट्य की अभिव्यक्ति का उदाहरण 'इन्दुकान्त शुक्ल' के काव्य में मिलता है – राघव की जीवन–संध्या कितनी धूम्रायित। रेखा–संकुल मस्तक मानस में है मंथन। संदेहों के सर्पों से संत्रस्त मनीषा। प्रस्तर प्रश्न विद्ध प्राणों को प्रतिपल बोझिल। कोई हेमवन्ती रेखा इस अंधकूप को, क्या लंका का अग्नि स्नान आवश्यक था? अपराधी लंकेश, दण्ड पा गए प्रजाजन? अग्नि तीर्थ में उतरी दो दो बार मैथिली। खरी, राज महिषी का गौरव राख में मिला। किसका तोष हुआ–साकेत, रजक का? मेरा? और, क्षमा क्या करेगी मुझ को मिथिला?[22]

भारतीय समाज में आदमी जब यह सोचता है कि उसकी बात को दूसरा न समझे तब वह ऐसी भाषा का प्रयोग करता है जो आमजन की समझ से दूर हों। ऐसी भाषा पहेली बन जाती है। इसको बुझौवल भी कहते हैं। ये मनुष्य की बुद्धि का विकास करती है। ''लोक सुभाषित की दूसरी विधा पहेलियाँ हैं जिनको संस्कृत में प्रहेलिका भी कहते हैं। मानव प्रकृति रहस्यात्मक है। जब वह चाहता है कि उसके कथन के अभिप्राय को सर्वसाधारण लोग न समझ सके तब वह ऐसी भाषा का प्रयोग करता है जो सामान्य बुद्धि के परे हो। यही पहेली का रूप धारण कर लेती हैं।[23] भारतीय ग्रामीण अंचल में नर–नारी शकरकन्द (कन्द) को बहुत पसन्द से सेवन करते हैं। पूरण मुद्गल की कविता में इसका पहेली के रूप में सुन्दर चित्रण मिलता है – लाल छड़ी मुंह में गड़ी, सासु ले पतोही बड़ी।[24]

सत्यज की कविता में प्रकृति को लेकर पहेली का सुन्दर रूप मिलता है – एक थाल मोतिन से भरा, सबके सिर पर औंधा धरा। चारों ओर थाल वह फिरे, मोती एक न उससे गिरै।[25]

कवि 'अमित' ने भी अपनी कविता में सुन्दर ढंग से पहेलियाँ/बुझौवल का उल्लेख किया है – उगते सूरज को / कौन करता है, काले पंजों से सलाम? / किसने बो दी हैं नागफनियाँ / खेतों में?[26]

निष्कर्ष

निष्कर्षतः उपरोक्त विवेचन के आधार पर हम कह सकते हैं कि स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता में लोक साहित्य के विभिन्न पक्षों की कविताओं में अभिव्यक्ति हुई है क्योंकि लोक–साहित्य एक स्वतन्त्र जीवन प्रवाह का सूचक है, जिसमें कोई भी सीमा, नियम, बन्धन नहीं है। स्वांत्र्योत्तर हिन्दी कविता में कवियों ने लोक–साहित्य के अनेक पक्षों – लोक गीत, लोक नाट्य, पहेलियाँ, बुझौवल, मुहावरे, लोकोक्ति, लोक गीत आदि का सार्थक प्रयोग किया है। इनके प्रयोग से कविताएँ मार्मिक एवं रोचक बनी हैं। इन कविताओं में इन पक्षों के माध्यम से न केवल मनोरंजन व हास्य व्यंग्य की सृष्टि हुई है बल्कि आधुनिक कविता लोक–जीवन से भी जुड़ी है। बहुत ही ज्यादा ज्ञान की राशि इन कविताओं में आई है क्योंकि लोक व्यवहार के अनेक पक्ष लोक साहित्य की अपनी सुन्दरता है। हम कह सकते हैं कि इन सभी पक्षों से समाज का समस्त लोक जीवन साहित्य में ऐसे तैरने लगा जैसे कि रामायण और महाभारत में भारत देश। अतः हम कह सकते हैं कि लोक साहित्य की यही सबसे बड़ी विशेषता है। निश्चित रूप से हम कहेंगे कि स्वातंत्र्योत्तर भारत में आम जीवन के साथ रचना की जो प्रतिबद्धता उपस्थित हुई, उसने लोक साहित्य की ओर पुनः एक बार रचनाकार को आकर्षित किया है।

संदर्भ

1. *आलोचना जनवरी 1853, पूर्णांक 6, पृ॰ 47*
2. *राहुल सांकृत्यायन, राहुल निबंधावली, पृ॰ 13*
3. *डॉ॰ हजारी प्रसाद द्विवेदी, विचार और वितर्क, पृ॰ 210*
4. *ऋग्वेद, 3/53/12*
5. *डॉ॰ हजारी प्रसाद द्विवेदी, विचार और वितर्क, पृ॰ 205*
6. *डॉ॰ वासुदेव शरण अग्रवाल, लोक संस्कृति विशेषांक, 'सम्मेलन पत्रिका', पृ॰ 65*
7. *राहुल सांकृत्यायन, राहुल निबन्धावली, पृ॰ 68*
8. *ब्रह्मस्वरूप शर्मा, हिन्दी मुहावरे, दो शब्द से, पृ॰ 107*
9. *भारत यायावर, मैं हूँ यश हूँ, पृ॰ 57*
10. *मुनि रूपचन्द्र, तलाश एक सूरज की, पृ॰ 14*
11. *डॉ॰ सारस्वत मोहन 'मनीषी' मनीषी सतसई, पृ॰ 36*
12. *डॉ॰ श्याम परमार, भारतीय लोक साहित्य, पृ॰ 184*
13. *डॉ॰ कुमार विमल, ये सम्पुट सीपी के, पृ॰ 20*
14. *डॉ॰ सारस्वत मोहन 'मनीषी' मनीषी सतसई, पृ॰ 36*
15. *लेखक तहडौती के लोक गीत (प्राक्कथन, डॉ॰ सत्येन्द्र)*
16. *हिन्दी साहित्य सम्मेलन पत्रिका – लोक संस्कृति अंक, सं॰ 2010, पृ॰ 37*
17. *रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' प्रत्यूष की भटकी किरण, पृ॰ 60*
18. *सं॰ अज्ञेय, तार सप्तक, पृ॰ 208*
19. *नरेश मेहता, संशय की एक रात, पृ॰ 71*
20. *रघुवीर शरण 'मित्र' मानवेन्द्र, पृ॰ 138*
21. *सं॰ डॉ॰ नगेन्द्र, भारतीय नाट्य साहित्य, पृ॰ 84*
22. *इन्दुकान्त शुक्ल, सागर बेला, पृ॰ 33*
23. *कृष्ण देव उपाध्याय, लोक संस्कृति की रूपरेखा पृ॰ 300*
24. *पूरण मुद्गल, अश्व लौट आयेगा, पृ॰ 11*
25. *डॉ॰ ओम प्रकाश भाटिया 'अराज' सत्यज, पृ॰ 91*
26. *अमित, रंग बदलते हुए, पृ॰ 14*